दशलक्षण पर्व में आकिंचन्य। यहाँ सम्यग्दर्शन में भी, एक राग का कण भी मेरा नहीं — ऐसी दृष्टि होती है। अधिकार चलेगा। यहाँ तो मुनिपने की बात है। सम्यग्दृष्टि को राग का कण और रजकण, वह मेरा नहीं है; मैं तो ज्ञायक आनन्दस्वरूप हूँ — ऐसी दृष्टि को यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसको दूसरा राग-आसक्ति का होता है परन्तु वह मेरा है — ऐसा नहीं होता। यहाँ तो मुनि को आसक्ति का राग भी नहीं, यह बतलाते हैं। आहाहा! आकिंचन्य है न?

तिविहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स॥४०२॥

जो मुनि लोक व्यवहार से विरक्त होकर 'चेयणं इधर्म स्वभाव संगम' चेतन में शिष्य और संग का ममत्व छोड़ दे... आहाहा! यह मेरा शिष्य है अथवा यह मेरा संघ है, यह भी छोड़ दे। 'चेयणं इधर्म' पुस्तक-पिच्छी, कमण्डल में भी ममत्व का जो अंश है, वह छोड़ दे। आहाहा! और अचेतन में आहार, बस्ती और देह... मुनि को आहार, रहने का स्थान और देह — उसमें से भी ममत्व छोड़ दे। चारित्रवन्त तो है, अपने स्वरूप में-आनन्द में रमनेवाला तो है परन्तु थोड़ा राग का अंश — किसी शिष्य से मेरा संघ है, मेरा शिष्य है, यह मेरा धर्म उपकरण, पिच्छी, कमण्डल, पुस्तक — इसकी भी वृत्ति ममत्व, स्वभाव के आश्रय से आनन्द का स्वाद लेने से उसे छोड़ दे। विशेष आत्मा का आनन्द का अनुभव लेने के लिए इस आसक्ति का राग भी छोड़ दे। आहाहा! 'तिविहेण' मन, वचन और काया, कृत, कारित और अनुमोदना... ऐसा मार्ग है। मुनिपना कैसा होता है? यह बतलाते हैं। समझ में आया? मुनि को वस्त्र या पात्र तो होते नहीं परन्तु शिष्य का संघ होता है या पिच्छी, कमण्डल और पुस्तक होते हैं। आहाहा! उनके प्रति भी ममत्व का अंश छोड़ दे — यह आकिंचन, मेरी कोई चीज नहीं है। आहाहा! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाला हूँ। आहाहा! इसको दशलक्षण पर्व में आकिंचन्य धर्म कहते हैं।

मुनि को वस्त्र और पात्र तो होता ही नहीं है। (वस्त्र-पात्रवाले) वे तो मुनि हैं नहीं। समझ में आया? यह वस्त्र-पात्र रखकर मुनि मानते हैं, वह तो मुनि है ही नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परन्तु जिसने वस्त्र और पात्र छोड़ दिया है, परन्तु अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र चारित्र का स्वाद लिया है, आहाहा! जिसकी नग्नदशा है और जिसको अचेतन मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक आदि होते हैं, उनके प्रति भी 'वह मैं नहीं', मैं नहीं — यह दृष्टि तो हो गयी है। यह तो अस्थिरता का राग, वह मैं नहीं। आहाहा! अकेला वीतरागी भाव, उस वीतरागी भाव में क्रीड़ा करते हैं, आनन्द में झूलते हैं। उसको आकिंचन्यभाव कहते हैं। यह नौवाँ (धर्म) हुआ।

अब चलता अधिकार। दृष्टान्त आया है न? दृष्टान्त। **दृष्टान्त देकर इसी बात को**

स्पष्ट करते हैं.... क्या ? कि यह आत्मा जो ज्ञायक चैतन्यस्वरूप है, वह कभी रागरूप नहीं होता; और राग है, वह चैतन्यस्वरूप नहीं होता। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन की बात है। आहाहा! **जैसे खारापन जिसका लक्षण है ऐसा नमक....** खारापन जिसका लक्षण, वह नमक। **पानीरूप होता हुआ दिखायी देता है...** वह नमक है, वह पानीरूप होता दिखायी देता है, पानी हो जाता है, नमक का पानी हो जाता है। आहाहा! दृष्टान्त तो कैसा देखो न! नमक है नमक, नमक वह पानी हो जाता है। एक बात! **और द्रवत्व (प्रवाहीपना) जिसका लक्षण है, ऐसा पानी....** खारा पानी होता है न नमक का, वह **पानी नमकरूप होता दिखायी देता है,...** जो खारापना है न लवण का, वह खारा हो जाता है, लवण हो जाता है। क्या कहा ? समझ में आया ? कि जो लवण है, वह पानीरूप-खारे पानीरूप हो जाता है, उसका स्वभाव है और पानी जो खारा है, वह लवणरूप हो जाता है — नमकरूप हो जाता है। ऊपर दृष्टान्त तो देखो! आहाहा! **क्योंकि खारेपन और द्रवत्व का एक साथ रहने में अविरोध है,....** खारापन और द्रवत्व — पानी होना, यह तो उसका स्वभाव है, यह तो अविरोध है। नमक है, वह पानी हो जाना, वह तो अविरोध है, कोई विरोध नहीं है। समझ में आया ? आहाहा! **अर्थात् उसमें कोई बाधा नहीं आती,....** यह तो दृष्टान्त हुआ।

इसी प्रकार लवण की डली है, वह खारे पानीरूप हो जाये और खारा पानी है, वह लवणरूप हो जाये तो इसमें कोई विरोध नहीं है। आहाहा!

अब दृष्टान्त का सिद्धान्त। **नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य....** आहाहा! जैसे नमक की डली, वह पानीरूप हो, खारे पानीरूप हो परन्तु आत्मा नित्य उपयोग लक्षणवाला जीवद्रव्य, **पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखायी नहीं देता....** वह रागरूप होता है — ऐसा दिखायी नहीं देता। आहाहा! समझ में आया ? नमक की डली, पानीरूप — खारे पानीरूप होती दिखती है; वैसे भगवान उपयोगलक्षण-ज्ञानदर्शन उपयोग — ऐसा उपयोगस्वरूप भगवान, कभी दया, दान के राग, कभी रागरूप हो जाये — ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ?

दृष्टान्त तो समझ में आये ऐसा है — सीधी बात है। आहाहा! भगवान, नित्य उपयोग जिसका लक्षण है — **'सव्वण्हु नाणदिट्ठो जीवो उपयोग लख्खणो निच्चं'**

यह तो जानन-देखन उपयोगस्वरूप भगवान त्रिकाल है। जो उपयोगस्वरूप भगवान (आत्मा), वह क्या अनउपयोगरूप-रागरूप कभी होता है? नमक का — लवण का पानी होता है, यह तो अविरोध है परन्तु उपयोग लक्षणस्वरूप (आत्मा), वह अनउपयोग रागरूप कभी होता है? यह तो विरोध है। आहाहा! शरीर और वाणीरूप नहीं होता — यह प्रश्न यहाँ है नहीं। यहाँ तो भगवान चैतन्यदल, उपयोग लक्षण नित्य त्रिकाल, वह कभी राग — दया, दान, व्रतादिक, शुभ-अशुभ राग, वह राग पुद्गल है तो भगवान, जैसे नमक पिघल करके पानी होता है.... पिघलता है न, पिघलना कहते हैं न? लवण का पानी हो जाता है पिघल करके (पानी हो जाता है)। वैसे ही भगवान... आहाहा! क्या दृष्टान्त! चैतन्यमूर्ति भगवान, उपयोगस्वरूप भगवान, यह राग-अनउपयोगरूप है, उसरूप कभी होता है? आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो परन्तु उस रागरूप भगवान कभी होता है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उपयोगस्वरूप भगवान पिघलकर क्या रागरूप होता है? आहाहा! लवण तो पिघलकर पानी हो (जाता है); वैसे भगवान ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप प्रभु... आहाहा! वह कहीं पिघल करके रागरूप होता है? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प जो है, उस रागरूप क्या प्रभु होता है? आहाहा! तो जो व्यवहाररत्नत्रय का राग है... आहाहा! देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, शास्त्र का बहिर्लक्ष्यी शब्द का ज्ञान और पंच महाव्रत का परिणाम, यह राग है — तो भगवान आत्मा वीतरागी शुद्ध उपयोगस्वरूप प्रभु आत्मा.... आहाहा! क्या कभी रागरूप होता हुआ दिखायी देता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! तात्त्विक बात है, अध्यात्म की बात है। आहाहा! समझ में आया?

खारापन जिसका लक्षण है — ऐसा नमक, पानीरूप होता हुआ दिखायी देता है?.... कि हाँ! वैसे नित्य उपयोग लक्षणवाला जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्यरूप होता हुआ दिखाई नहीं देता। आहाहा! चाहे तो तीर्थंकर गोत्र बाँधे — ऐसा भाव हो, उस भावरूप क्या भगवान ज्ञानस्वरूप उपयोग होता है? वह राग तो अन-उपयोग है, उसमें ज्ञायकस्वरूप का उपयोग तो अन्दर में है ही नहीं। आहाहा! **नित्य उपयोगलक्षणवाला...** ऐसा लिया है न? जीवद्रव्य। भगवान तो नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य है, वह पुद्गलद्रव्यरूप होता हुआ दिखायी नहीं देता। आहाहा! इस व्यवहाररत्नत्रय के रागरूप होता हुआ दिखायी

नहीं देता। आहाहा! समझ में आया?

चैतन्य के नूर के तेज का पूर प्रभु, वह कहाँ राग अन्धकार अचेतन अनुपयोग अस्वभावभावरूप भगवान होता दिखायी देता है? नहीं। आहाहा! जिसको राग अन-उपयोग अपना है (ऐसा) दिखे, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? जिसकी दृष्टि में भगवान आनन्द और ज्ञान उपयोगस्वरूप प्रभु, रागरूप मैं हूँ — ऐसा भासित हो, वह पुद्गलरूप हुआ — ऐसा भासित हुआ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह जैन नहीं है। आहाहा! जिनस्वरूपी, उपयोगस्वरूप, वह रागरूप है (— ऐसा माननेवाला) जैन नहीं है। आहाहा! उपयोगस्वरूप कहने पर वह वस्तु स्वयं जिनस्वरूप ही है। भगवान जिनस्वरूपी,... ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप कहो या वीतरागी उपयोगस्वरूप कहो या वीतरागभाव कहो — क्या वह रागरूप होता है? व्यवहाररत्नत्रयरूप होता दिखता है? (नहीं)। आहाहा! ज्ञानी को अपना शुद्ध उपयोगस्वरूप भगवान, रागरूप होता नहीं दिखता, परन्तु राग है, उसका जानना उपयोगरूप दिखता है। आहाहा! उसका और अपना जानना उपयोग उसरूप दिखता है। समझ में आया?

लोगों ने पूरी मूल चीज.... मूल चीज ही यह है और मूल चीज के बिना सब व्रत और तप नियम, पूजा, भक्ति, और यह मन्दिर सब व्यर्थ है। आहाहा! वह दिखायी नहीं देता! है! और **नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला....** आहाहा! सामने लिया है। जो राग है — देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति का राग, वह राग तो जड़ है। आहाहा! **नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षण....** राग का तो नित्य अनुपयोग लक्षण और भगवान का तो नित्य उपयोग लक्षण है। आहाहा! यह आत्मा.... यह तो धीरा का काम है भाई! आहाहा! अन्दर जानना-देखना नित्य उपयोग लक्षणवाला प्रभु, वह अनुपयोग लक्षण राग-यह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प — राग अनुपयोगरूप क्या आत्मा कभी होता है? (नहीं होता है)। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि राग-व्यवहार है, उससे निश्चय (होता है)। अरे प्रभु! यह तू क्या करता है? पुद्गल से आत्मा होता है? समझ में आया?

यह राग / व्यवहार — दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत का परिणाम, यह सब अनुपयोग जड़ राग है। इस अनुपयोग जड़

राग से उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा का पता मिल जाता है ? कठिन काम भाई ! आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा, अनुपयोग लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य; जो राग है, वह पुद्गलद्रव्य है। आहाहा ! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग.... आहाहा ! गजब काम करते हैं न ! भाई ! तेरी चीज का तुझे पता नहीं है। आहाहा ! तेरा नाथ ज्ञान और दर्शन उपयोगवाला प्रभु, इस जड़ राग अनुपयोगस्वरूप क्या दिखायी देता है ? और दिखायी देता है तो तुम मिथ्यादृष्टि हो। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

क्या टीका ! क्या सार का सार !! समयसार ! वह द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, यह अनुपयोगी चीज है। आहाहा ! द्रव्यकर्म, भावकर्म, और नोकर्म - शरीर, वाणी आदि; देव, गुरु और शास्त्र भी नौकर्म हैं। आहाहा ! यह भगवान उपयोगस्वरूप है, वह अनुपयोग अर्थात् जिसमें यह उपयोग नहीं — ऐसे अनुपयोग जो यह परवस्तु है, उसरूप कभी होता है ? आहाहा !

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि त्रिलोकनाथ भगवान का शिष्य आत्मा होता है ? आहाहा ! आत्मा, परद्रव्य का शिष्य होता है ? (नहीं) आहाहा ! यह लोगों को कठिन पड़ता है। देव, शास्त्र, गुरु को भी इन्द्रिय कहा है। यह आत्मा अनीन्द्रिय है, तब यह शरीर, यह इन्द्रियाँ, भावेन्द्रियाँ और देव-गुरु-शास्त्र तथा स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, ये सभी इन्द्रियाँ हैं, अर्थात् ये जड़ हैं। आहाहा ! इसकी अपेक्षा से हों। उनकी अपेक्षा से नहीं। जैसे अपने स्वद्रव्य की अपेक्षा से भगवान का द्रव्य भी अद्रव्य है। आहाहा ! उसकी अपेक्षा से द्रव्य — भगवान पूर्ण है परन्तु यह आत्मा द्रव्य है, इस अपेक्षा से पर अद्रव्य है। भगवान आत्मा का क्षेत्र स्वक्षेत्र है तो पर का क्षेत्र, वह इस आत्मा की अपेक्षा से अक्षेत्र है। स्वकाल की अपेक्षा से अपना आत्मा त्रिकाल है तो अपनी अपेक्षा से पर काल का उसमें अकाल है — पर अकाल है और मेरा भगवान पूर्णानन्दभाव भावस्वरूप मैं हूँ, तो इस भाव की अपेक्षा से सब तीर्थंकरों का भाव भी इस भाव की अपेक्षा से अभावस्वरूप है। युगलजी ! ऐसी बातें हैं। अरे ! मार्ग तो मार्ग ! आहाहा !

भाषा तो सादी है, भाव तो भाई जो है, वह है। आहाहा ! **नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य....** भगवान जीवद्रव्य तो नित्य ज्ञान-दर्शन के लक्षण के उपयोगवाला जीव है।

आहाहा! वह **पुद्गलद्रव्यरूप होता हुआ दिखायी नहीं देता...** वह रागरूप होता है — ऐसा दिखायी नहीं देता। आहाहा! तो राग आता है न? परन्तु रागरूप हो — ऐसा दिखायी नहीं देता। इस राग से पृथक् अपना उपयोग है, उसरूप दिखायी देता है। राग का जो ज्ञान पर प्रकाशक की अपेक्षा से और अपना आत्मा स्वप्रकाश, इस स्वपरप्रकाशक उपयोगरूप आत्मा दिखायी देता है। आहाहा! धर्मी को व्यवहाररत्नत्रय का ज्ञान जो यहाँ होता है — स्व-परप्रकाशक, उस उपयोगरूप दिखायी देता है। रागरूप आत्मा है — ऐसा दिखायी नहीं देता है। आहाहा!

जितनी वृत्ति उठती है, यह सब अनुपयोग है; यह उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा, उस अनुपयोगरूप कभी दिखता है? और तुझे दिखे तो तू मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! आत्मा ज्ञायक आनन्द प्रभु उपयोगस्वरूपी है। तुझे राग उपयोगस्वरूपी दिखायी देता है तो आत्मा जड़ हुआ। आहाहा! समझ में आया? वह उपयोगस्वरूप भगवान भिन्न नहीं रहा — ऐसी बातें! अब लोगों को कठिन पड़ती है, क्या हो?

अरे भाई! कल देखो न! बेचारे दो जवान लड़के भाई दोनों गूँगे और बहरे, उनकी माँ को कैसा लगता होगा? एक लड़का ऐसा हुआ, वहाँ दूसरा फिर ऐसा हुआ; अब बेचारे पालकर बड़ा किया, वापिस दोनों हैं होशियार, हों! आहाहा! वह कुछ सुनते नहीं, बोल सकते नहीं — ऐसा भाव है तो उस भावरूप क्या वह आत्मा हो गया है? आत्मा तो नित्य उपयोगस्वरूप अन्दर है। आहाहा! समझ में आया?

क्या संक्षिप्त बात में.... भगवान आत्मा, जानन-देखन नित्य उपयोगस्वरूप प्रभु, इस अनजान और अनुपयोग — ऐसे राग और दया, दान, व्रत आदि का विकल्प इसरूप कभी दिखायी देता है, प्रभु? आहाहा! चैतन्य तो अपने शुद्ध उपयोगरूप दिखायी देता है; रागरूप दिखायी नहीं देता। आहाहा! है या नहीं पाटनीजी? यह अन्दर है, अन्दर, हों! आहाहा! भगवान पास पड़ा है न अन्दर! आहाहा! आहाहा! इन अक्षररूप कभी आत्मा हुआ ही नहीं, शास्त्र की रचना में आत्मा कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! शास्त्र तो जड़ परमाणु है, उसकी रचना आत्मा क्या करे? परन्तु उस ओर का जो राग है, उसरूप भी आत्मा होता नहीं है। आहाहा!

क्योंकि नवतत्त्व में शुभ-अशुभराग, वह पुण्य-पाप का तत्त्व है। समझ में आया? वह आत्मतत्त्व नहीं है। आहाहा! क्योंकि नौ में ज्ञायकतत्त्व तो भिन्न है। आहाहा! वह जानन-देखन उपयोगस्वरूप भगवान तो इस राग से तो भिन्न है। ऐसा भगवान आत्मा, रागरूप कैसे हो? भिन्नरूप है, वह अभिन्नरूप कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात भाई! आहाहा!

और नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य.... यह राग है, वह नित्य अनुपयोग है। आहाहा! यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, यह आरती उतारना और जय नारायण, जय नारायण.... समवसरण में भगवान के पास गये — जय नारायण... आहाहा! हीरा के थाल, मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल, समवसरण में साक्षात् जय हो... परन्तु यह राग है। यह क्रिया तो (आत्मा) कर नहीं सकता परन्तु रागरूप नहीं होता। आहाहा! ऐई! वहाँ कभी ऐसा सुनने को नहीं मिला!

श्रोता : कहीं है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही तो यह कहते हैं न हमारे पाटनीजी कहते हैं न? कि ऐसा स्पष्टीकरण....

श्रोता : राग होवे तो बोझा लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोझा लगे। कहा न कल, कहा था न।

श्रोता : बोझा ही लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोगस्वरूप भगवान में राग का बोझ-भार आता है। आया था न कल? आहाहा! बोझा का अर्थ वह भिन्न चीज है; तो वह अपने में आ नहीं सकती। आहाहा! दुःखरूप लगती है। आहाहा!

नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य.... आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग, यह तो नित्य अनुपयोग लक्षणवाला जड़द्रव्य है। आहाहा! अरे..रे! विषय में राग होता है, वह राग तो अनुपयोग जड़ है प्रभु! आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव-शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ छियानवें हजार स्त्रियाँ... आहाहा! वह तो मैं नहीं परन्तु उस ओर का राग हुआ, वह भी मैं नहीं। आहाहा! मेरा भगवान, इन्द्रिय के विषय और

राग में आया ही नहीं न ! आहाहा ! मैं जहाँ हूँ, वहाँ अनुपयोग राग है ही नहीं न, आहाहा ! समझ में आया ? यह समयसार तो सभा में उन्नीसवीं बार पढ़ा जा रहा है, अठारह बार एक-एक बार गिनो तो उन्नीसवीं बार तो अधिक स्पष्टीकरण होता है या नहीं ? आहाहा !

आहाहा ! इस राग से आत्मा को लाभ होता है — ऐसी उपदेश शैली भी मिथ्यात्व है। आहाहा ! क्योंकि राग है अनुपयोगस्वरूप जड़... क्या उपयोगस्वरूपी आत्मा जड़ हो जाता है ? आहाहा ! राग व्यवहार का हो परन्तु उसकी रुचि छोड़कर भगवान ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि में आया, वहाँ क्या रागभाव से उपयोगभाव प्रगट हुआ ? अनुपयोगभाव से क्या उपयोगस्वरूप भगवान जानने में आया ? आहाहा ! तो व्यवहार से आत्मा निश्चय प्राप्त कर सकता है ? प्रभु ! यह क्या बात है ! आहाहा ! समझ में आया ? **नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य, जीवद्रव्य होता हुआ देखने में नहीं आता....** आहाहा ! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग, नित्य उपयोगलक्षणवाला देखने में नहीं आता। आहाहा ! उससे नित्य उपयोग लक्षण का भान होता है — ऐसा देखने में नहीं आता। आहाहा ! युगलजी ! कोटा में भी सब बहुत गड़बड़ चलती है, युगलजी है तो भी।

श्रोता : सारे हिन्दुस्तान में गड़बड़ है, अज्ञान हो वहाँ गड़बड़ ही होती है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ! यह तो दो और दो चार जैसी बात है। आहाहा ! यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं सन्त.... आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की गाथा में यह भाव भरा है, उसे अमृतचन्द्राचार्य तर्क से टीका करके भाव निकाला है। भगवान ! राग जो है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का राग हो, महाव्रत का राग (हो), वह अनुपयोग राग क्या उपयोगस्वरूप भगवान (आत्मा) हो सकता है ? आहाहा ! उसका अर्थ तो यह हुआ कि व्यवहार, जो अनुपयोग राग है, उससे उपयोगस्वरूप की दृष्टि नहीं होती। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

जब भगवान के श्रीमुख से यह व्याख्या निकलती हो, सन्तों को... आहाहा ! टीका भी टीका ! आहाहा ! भरतक्षेत्र में इस समयसार जैसा कोई शास्त्र नहीं है। आहाहा ! जिसके एक-एक पद में कितनी गम्भीरता ! आहाहा ! खोलते-खोलते (स्पष्टीकरण करते-करते) पार न आवे — ऐसी बात अन्दर है। आहाहा !

उपयोगस्वरूप भगवान क्या अनुपयोगस्वरूप दिखायी देता है ? यह अनुपयोगस्वरूप राग क्या उपयोगस्वरूप आत्मा दिखायी देता है ? आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन-भान होता है... आहाहा ! तब क्या उपयोगस्वरूप भगवान, वह राग मन्द हुआ है तो उससे उपयोगस्वरूप की दृष्टि हुई ? और फिर.... आहाहा ! उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आया, और अन्तर में जाने का -स्थिर होने का भाव आया, आहाहा ! यह दीक्षित होते हैं... आहाहा ! इस शरीर को रमानेवाली तू स्त्री, मैं तो मेरी अनुभूति, आनन्द का नाथ मेरा भगवान, उसके पास जाना चाहता हूँ, छोड़ दे। आहाहा ! व्यवहार से आज्ञा माँगता है; न छोड़े तो भी वह तो चला जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! परन्तु व्यवहार ऐसा लिया है। आहाहा ! मेरी आनन्दरूपी अनुभूति मेरे पास है। आहाहा ! उपयोगस्वरूप कहो या आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, मेरी लीनता में रमनेवाला मैं ! अब इस शरीर को रमानेवाली स्त्री, वह मेरी नहीं; मुझे छोड़ दे। न छोड़े तो मैं चला जाता हूँ। आहाहा ! अपने भगवान के पास मैं जाना चाहता हूँ। शुद्ध उपयोग, नित्य उपयोग — ऐसा मैं भगवान आत्मा... आहाहा ! उस उपयोग की स्थिरता करने के लिए मैं जाता हूँ। देह की क्रिया करने को या महाव्रत करने को (जाता हूँ) — ऐसा नहीं है। जो उपयोगस्वरूप है, उसमें स्थिरता करने को मैं जाता हूँ। आहाहा !

वन में अकेला, सिंह और बाघ की दहाड़ हो, वहाँ वह अकेला चला जाता है। आहाहा ! वह उपयोगस्वरूप आनन्द का स्वाद आया है और अनुपयोगस्वरूप राग का स्वाद छूट गया है। समझ में आया ? अब ऐसी व्याख्या ! दो लाईन में तो.... !! आहाहा ! नित्य अनुपयोग-ऐसे। राग में नित्य अनुपयोग है। आहाहा ! व्यवहाररत्नत्रय के राग में कभी कोई उपयोग का अंश आता है ? आहाहा ! नित्य अनुपयोग लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य, जीवद्रव्य होता हुआ देखने में नहीं आता। आहाहा ! यह उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा, रागरूप हो जाये — ऐसा देखने में नहीं आता। उसका व्यवहार-राग से मैं उपयोगस्वरूप आत्मा में आ जाऊँ — ऐसा देखने में नहीं आता। आहाहा ! परघर में मैं रहूँ तो स्वघर में मैं आ जाऊँ — ऐसा है नहीं। आहाहा ! अरे ! ऐसी बातें !! क्या टीका, क्या टीका !!

किसकी तरह ? प्रकाश और अन्धकार एक साथ दिखायी नहीं देते। **क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की भाँति....** अब देखो ! पहले कहा कि लवण जो खारा है, वह

पानीरूप होता है खारा पानी और खारा पानी, नमकरूप होता है; वैसे राग है, वह आत्मारूप हो जाये और आत्मा, रागरूप हो जाये — ऐसा कभी नहीं बनता।

अब, अस्ति का दृष्टान्त दिया — **प्रकाश और अन्धकार की भाँति....** आहाहा! उपयोग भगवान वह तो प्रकाश है और राग-व्यवहार, वह अन्धकार है। आहाहा! अद्भुत बात भाई! भगवान ऐसा कहते हैं — हमारे प्रति तेरा लक्ष्य है, वह उपयोग अन्धकार है। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य की ओर तेरा लक्ष्य रहता है, वह उपयोग राग है। आहाहा! वह अन्धकार है और भगवान तो उपयोगस्वरूप प्रकाश है। क्या प्रकाश, अन्धकाररूप होता है?

श्रोता : कभी नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्धकार प्रकाशरूप होता है? आहाहा! यह तो पकड़ में आये ऐसा है। यह कहीं.... आहाहा!

प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का.... उपयोग, वह प्रकाश है और अनुपयोग राग, वह अन्धकार है। **एक ही साथ रहने में विरोध है;....** एक ही साथ रहने में विरोध का अर्थ (यह) है कि प्रकाश और अन्धकार दोनों एक चीज है — ऐसा रहने में विरोध है। दूसरी बात — शुद्ध उपयोग के भान में राग आया, परन्तु राग साथ में है, वह भिन्नरूप है। वह प्रकाशरूप साथ में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? प्रकाश और अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते — इसका अर्थ? कि चैतन्य उपयोग प्रकाश और राग उपयोग अन्धकार — दोनों एक नहीं हो जाते। समझ में आया? एक साथ रहने का अर्थ? कि रागरूप आत्मा हो जाये और शुद्धरूप भी (रहे) — ऐसा नहीं होता। अपना शुद्ध उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा — ऐसा भान हुआ तो कमजोरी से राग-व्यवहार आता है परन्तु वह अनुपयोग भिन्न रहता है। उपयोग में एक साथ आ जाता है — साथ का अर्थ — उपयोग और अनुपयोग एक हो जाता है — ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञान उपयोग हुआ, वहाँ अनुपयोग रागादि बाकी आता है, हों! परन्तु वह अन्धकार और प्रकाश की भाँति भिन्न चीज है। आहाहा! अरे! एक बार मध्यस्थता से सुन न तो पता पड़े! यह विरोध करते हैं। क्या करते हैं प्रभु! एकदम निश्चयाभास, खोटा, झूठा... भगवान को भी

झूठा सिद्ध करते हैं और ऐसा लिखते हैं, लो! अरे प्रभु! क्या करता है यह तू? आहाहा! उसे ऐसा कि इस व्यवहार से कुछ लाभ होगा — ऐसा माने तब तो अनेकान्त कहलाये। आहाहा! परन्तु यहाँ तो अन्धकार और प्रकाश दोनों भिन्न चीज गिनने में आयी है। व्यवहार — अन्धकार से प्रकाश-चैतन्यप्रकाश जानता है? आहाहा!

लवण का दृष्टान्त, तो लवण तो पानीरूप होता है; वैसे प्रकाश अन्धकाररूप होता है? खारा पानी, नमकरूप होता है; वैसे अन्धकार प्रकाशरूप होता है? आहाहा! समझ में आया? **प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है....** एक ही साथ का अर्थ? उपयोग का भान है, वहाँ यह राग अन्धकार हो परन्तु दोनों एक हैं, ऐसे एक साथ नहीं रहते। आहाहा! उपयोग भी है और अन्धकार भी उपयोग में है — ऐसा नहीं है। राग अन्धकार / व्यवहार आता है परन्तु वह भिन्न होकर रहता है; एकरूप नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या शैली!

ज्ञानी को व्यवहार अन्धकार आता है। आहाहा! जब तक वीतराग न हो, तब तक देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प आता है परन्तु है अन्धकार। आहाहा! तथापि उस प्रकाश के पास वह रह सकता है, किन्तु प्रकाशरूप होकर नहीं रह सकता। समझ में आया?

श्रोता : कठिन कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन नहीं है परन्तु लोगों को कहाँ जँचता है? बड़े पण्डित विरोध करते हैं न। आहाहा! क्या करे? वर्णीजी का दृष्टान्त सब देते हैं। देखो! वर्णीजी ने कहा है कि सोनगढ़ का साहित्य डुबोनेवाला है — ऐसा लिखते हैं। उन्होंने कहा था क्योंकि निमित्त से भी कभी होता है — ऐसा मानते थे। क्रमबद्ध नहीं (— ऐसा मानते थे)। तो यह विरोध करते थे, बात सच्ची।

अभी तो उसने स्वीकार — (कैलाशचन्दजी ने) स्वीकार किया है। उस समय क्रमबद्ध नहीं मानते थे, अब स्वीकार किया है (कि) क्रमबद्ध है और सोनगढ़वाले निमित्त मानते हैं परन्तु निमित्त से होता है — ऐसा नहीं मानते। इतना कहते हैं। ऐसे दो बोल आये हैं। यह दो बड़ी चर्चा हुई थी (संवत्) १३ की साल वर्णीजी के साथ बड़ी चर्चा हुई थी। आहाहा! प्रभु! यह मार्ग ऐसा है भाई!

श्रोता : धीरे-धीरे स्वीकार करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री: धीरे-धीरे स्वीकार करते हैं, बात तो ऐसी है। हमारे युगलजी ठण्डे व्यक्ति हैं न, इसलिए धीरे-धीरे... आहाहा! मार्ग ही यह है न प्रभु! और वह भी दो और दो चार जैसी बात है। व्यवहार होता है, उसका किसने इन्कार किया है परन्तु वह व्यवहार अन्धकार है। आहाहा! यह प्रकाश और अन्धकार एक साथ रहते हैं, अर्थात् एकरूप हो जाते हैं — ऐसा नहीं है। भाई! यह तो प्रज्ञाछैनी आया है न? प्रज्ञाछैनी-राग और स्वभाव का भान एकसाथ रह सकता है।

श्रोता : दोनों के बीच सन्धि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी सन्धि है। वह फिर अलग रखी है, यह तो एक साथ रहते हैं यह प्रश्न है। कलश-टीका में लिया है — व्यवहार का राग और भगवान की परिणति शुद्ध चैतन्य (परिणति) एक साथ रह सकते हैं। एक साथ, अर्थात् एक समय में रह सकते हैं, किन्तु एक होकर नहीं रह सकते; भिन्न होकर रह सकते हैं, उसमें कोई विरोध नहीं है। आहाहा! कहो समझ में आता है या नहीं कुछ? इन्हें उस जाति में मिलने के लिए इकतालीस हजार भरने पड़े। सोनगढ़िया हो गया है, इसे निकाल दो... निकाल दो। फिर जाति में मिलने के लिए इकतालीस हजार भरने के बाद अब कोई बोलता नहीं ऐसा।

अरे भगवान! यह मार्ग तेरे चैतन्य की जाति का मार्ग है प्रभु! भाई! यह कोई पक्ष और वाड़ा नहीं है। आहाहा! तू कैसा अन्दर शुद्ध उपयोग, नित्य उपयोगस्वरूप प्रभु, आहाहा! इस राग-अनुपयोग से कैसे प्राप्त हो? अन्धकार से प्रकाश कैसे प्राप्त हो? आहाहा! और प्रकाश में अन्धकार एकमेक कहाँ से हो? वैसे ही शुद्धोपयोग में, उपयोगस्वरूप लक्षण का भान हुआ, फिर राग-व्यवहार तो आता है परन्तु एकरूप कैसे हो? भिन्नरूप एक साथ रह सकते हैं। एकरूप होकर साथ नहीं रह सकते। आहाहा! समझ में आया? आज यह नौवाँ दिन है। है? अफर दिन है, नौ का अंक (अफर है)। आहाहा! ज्ञान भी अफर है, भाई! यह वस्तु ऐसी है। कहो, झाँझरीजी! ये सब वहाँ प्रमुख है। आहाहा! अन्तरिक्ष! वे (दूसरे लोग) ऐसा तूफान करे। क्या करे बापू? भाई! आहाहा! यह दिगम्बर धर्म तो अनादि सनातन है, यह कोई नयी चीज नहीं है। समझ में आया? श्वेताम्बर तो दो

हजार वर्ष पहले नया निकला है, उसमें यह ऐसी चीज है नहीं। आहाहा! आहाहा!

सूरज की भाँति प्रकाश — उपयोगस्वरूप प्रकाश आत्मा और अन्धकार समान राग एक साथ क्यों रहे? एकरूप एक साथ क्यों रहे? एकरूप होकर एक साथ क्यों रहे? भिन्नरूप होकर एक समय में एक साथ रह सकते हैं। आहाहा! यह **जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते,....** राग जड़ और भगवान चैतन्य प्रभु, ये कभी एक नहीं हो सकते। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो,....** आहाहा! यह प्रसन्न हो, प्रसन्न प्रभु! तेरी चीज कभी रागरूप हुई नहीं, राग तुझमें कभी आया नहीं। आहाहा! प्रसन्न हो जा एक बार! आहाहा! अर्थात् राग से भिन्न होकर आनन्द का अनुभव कर। आहाहा! यह प्रसन्न (का अर्थ है)। आहाहा! ऐ प्रसन्नकुमारजी! यह प्रसन्न आया, देखो! आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप राग से भिन्न है। वह रागरूप हुआ नहीं और तुम रागरूप हुआ नहीं, बस! आहाहा! भेदज्ञान करके प्रसन्न हो जा। आहाहा!

(अपने चित्त को उज्ज्वल करके) सावधान हो, और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव कर। मैं तो शुद्धस्वरूपी भगवान हूँ — ऐसा अनुभव कर। आहाहा!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)